

Chapter छह

देवताओं तथा असुरों द्वारा सन्धि की घोषणा

इस अध्याय में बताया गया है कि जब देवताओं ने भगवान् की स्तुति की तो वे उनके समक्ष किस प्रकार प्रकट हुए। भगवान् की सलाह के अनुसार देवताओं ने समुद्र-मन्थन से अमृत प्राप्ति के लिए असुरों के साथ सन्धि कर ली।

पिछले अध्याय में वर्णित देवताओं की स्तुति से क्षीरोदकशायी विष्णु प्रसन्न होकर उनके समक्ष प्रकट हो गये। सारे देवता उनके दिव्य शारीरिक तेज से लगभग चकाचौंध हो गये। अतएव प्रारम्भ में तो वे उनके शरीर का कोई भी अंग नहीं देख पाये, किन्तु कुछ समय बाद जब ब्रह्माजी ने उन्हें देखा तो उन्होंने शिव समेत भगवान् की स्तुति करनी प्रारम्भ कर दी।

ब्रह्माजी ने कहा “जन्म-मृत्यु से परे होने के कारण भगवान् नित्य हैं। वे भौतिक गुणों से रहित हैं; तो भी वे असीम शुभ गुणों के सागर हैं। वे सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर हैं, वे अदृश्य हैं और उनका रूप अचिन्त्य है। वे सभी देवताओं के लिए पूज्य हैं। उनके स्वरूप में असंख्य ब्रह्माण्ड स्थित रहते हैं अतएव वे काल, दिक् या परिस्थिति के द्वारा इन ब्रह्माण्डों से कभी विलग नहीं होते। वे प्रधान हैं। यद्यपि वे भौतिक सृष्टि के आदि, मध्य तथा अन्त हैं, लेकिन मायावादी दार्शनिकों द्वारा कल्पित सर्वेश्वरवाद में कोई दम नहीं है। भगवान् अपने अधीन बहिरंगा शक्ति के द्वारा समस्त भौतिक जगत को नियंत्रित करते हैं। वे अपनी अचिन्त्य दिव्य स्थिति के कारण भौतिक शक्ति के सदैव स्वामी बने रहते हैं। भगवान् अपने नाना रूपों में इस भौतिक जगत में भी सदैव विद्यमान रहते हैं, किन्तु भौतिक गुण उन्हें छू भी नहीं पाते। *भगवद्गीता* में दिये गये उपदेशों के द्वारा ही उनकी स्थिति समझी जा सकती है। जैसाकि *भगवद्गीता* (१०.१०) में कहा गया है—*ददामि बुद्धियोगं तम्। बुद्धियोग का अर्थ है*

भक्तियोग। केवल भक्तियोग की विधि से परमेश्वर को समझा जा सकता है।

जब शिवजी तथा ब्रह्माजी ने भगवान् की स्तुति की तो भगवान् प्रसन्न हो गये। अतः उन्होंने सारे देवताओं को उचित आदेश दिया। भगवान् अजित ने देवताओं को सलाह दी कि वे असुरों के समक्ष शान्ति प्रस्ताव रखें जिससे सन्धि हो जाने पर देवता तथा असुरगण क्षीरसागर का मन्थन कर सकें। इसके लिए सब से बड़े वासुकि सर्प को रस्सी और मन्दराचल पर्वत को मथानी बनाया जाये। इस मन्थन से विष भी उत्पन्न होगा, किन्तु उसे शिवजी ग्रहण कर लेंगे; अतएव भय की कोई आवश्यकता नहीं है। इस मन्थन से अनेक आकर्षक वस्तुएँ उत्पन्न होंगी, किन्तु भगवान् ने देवताओं को सावधान कर दिया कि वे ऐसी वस्तुओं से मोहित न हों और यदि कोई उपद्रव हो तो भी देवता क्रुद्ध न हों। देवताओं को ऐसी सलाह देकर भगवान् उस स्थान से अन्तर्धान हो गये।

भगवान् के आदेशानुसार देवताओं ने असुरों के राजा महाराज बलि से सन्धि कर ली। तब देवता तथा असुर दोनों ही मन्दर पर्वत को अपने साथ लेकर समुद्र की ओर चल पड़े। इस पर्वत की गुरुता के कारण देवता तथा असुर दोनों ही थक गये और कुछ तो वास्तव में मर गये। तब भगवान् विष्णु अपने वाहन गरुड़ की पीठ पर बैठकर वहाँ प्रकट हुए और उन्होंने अपनी कृपा से इन देवताओं और असुरों को पुनः जीवित कर दिया। तब भगवान् ने उस पर्वत को अपने एक हाथ से उठाकर गरुड़ की पीठ पर रख दिया और उस पर्वत पर बैठकर उस स्थान पर गये जहाँ मन्थन होना था। गरुड़ ने उस पर्वत को समुद्र के मध्य में रख दिया और तब विष्णु ने गरुड़ को आदेश दिया कि वह वहाँ से चला जाये क्योंकि उसके रहने पर वासुकि वहाँ नहीं आ सकता था।

श्रीशुक उवाच

एवं स्तुतः सुरगणैर्भगवान्हरिरीश्वरः ।

तेषामाविरभूद्राजन्सहस्राकर्णोदयद्युतिः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; स्तुतः—स्तुति किये जाने पर; सुर-गणैः—देवताओं द्वारा; भगवान्—भगवान्; हरिः—समस्त अशुभों को मिटाने वाले; ईश्वरः—परम नियन्ता; तेषाम्—ब्रह्माजी तथा सारे देवताओं के समक्ष; आविरभूत्—प्रकट हुए; राजन्—हे राजा परीक्षित; सहस्र—एक हजार; अर्क—सूर्य; उदय—उगते हुए; द्युतिः—उनका तेज।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा परीक्षित! देवताओं तथा ब्रह्मा जी द्वारा इस प्रकार स्तुतियों से पूजित भगवान् हरि उन सब के समक्ष प्रकट हो गये। उनका शारीरिक तेज एकसाथ

हजारों सूर्यो के उदय होने के समान था ।

तेनैव सहसा सर्वे देवाः प्रतिहतेक्षणाः ।

नापश्यन्खं दिशः क्षौणीमात्मानं च कुतो विभुम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तेन एव—इसके कारण; सहसा—एकाएक; सर्वे—सभी; देवाः—देवतागण; प्रतिहत-ईक्षणाः—उनकी दृष्टि चकाचौंध हो गई; न—नहीं; अपश्यन्—देख सके; खम्—आकाश को; दिशः—दिशाओं को; क्षौणीम्—पृथ्वी को; आत्मानम् च—तथा अपने आपको भी; कुतः—तथा देखने का प्रश्न ही कहाँ है; विभुम्—परमेश्वर को ।

भगवान् के तेज से सारे देवताओं की दृष्टि चौंधिया गई। वे न तो आकाश, दिशाएँ, पृथ्वी देख सके, न ही अपने आपको देख सके। अपने समक्ष उपस्थित भगवान् को देखना तो दूर रहा ।

विरिञ्चो भगवान्दृष्ट्वा सह शर्वेण तां तनुम् ।

स्वच्छां मरकतश्यामां कञ्जगर्भारुणेक्षणाम् ।

तप्तहेमावदातेन लसत्कौशेयवाससा ॥ ३ ॥

प्रसन्नचारुसर्वाङ्गीं सुमुखीं सुन्दरभुवम् ।

महामणिकिरीटेन केयूराभ्यां च भूषिताम् ॥ ४ ॥

कर्णाभरणनिर्भातकपोलश्रीमुखाम्बुजाम् ।

काञ्चीकलापवलयहारनूपुरशोभिताम् ॥ ५ ॥

कौस्तुभाभरणां लक्ष्मीं विभ्रतीं वनमालिनीम् ।

सुदर्शनादिभिः स्वास्त्रैर्मूर्तिमद्भिरुपासिताम् ॥ ६ ॥

तुष्टाव देवप्रवरः सशर्वः पुरुषं परम् ।

सर्वाभरणैः साकं सर्वाङ्गैरवनिं गतैः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

विरिञ्चः—ब्रह्माजी; भगवान्—भगवान् (ब्रह्मा को उनके शक्तिशाली पद के कारण भगवान् कहकर सम्बोधित किया गया); दृष्ट्वा—देखकर; सह—सहित; शर्वेण—शिवजी; ताम्—भगवान् के; तनुम्—दिव्य रूप को; स्वच्छाम्—स्वच्छ भौतिक कल्मष के बिना; मरकत-श्यामाम्—नीले मणि के प्रकाश के समान शारीरिक कान्ति से युक्त; कञ्ज-गर्भ-अरुण-ईक्षणाम्—कमल के फूल के गर्भ सहश गुलाबी आँखों वाले; तप्त-हेम-अवदातेन—पिघले सोने जैसी कान्ति से युक्त; लसत्—चमकता; कौशेय-वाससा—पीला रेशमी वस्त्र धारण किये; प्रसन्न-चारु-सर्व-अङ्गीम्—जिसके शरीर के सारे अंग अत्यन्त शोभनीय और सुन्दर; सु-मुखीम्—मुस्काते मुखमंडल से युक्त; सुन्दर-भुवम्—जिसकी भीहें अत्यन्त सुन्दर थीं; महा-मणि-किरीटेन—बहुमूल्य मणियों से जटितमुकुट वाले; केयूराभ्याम् च भूषिताम्—सभी तरह के आभूषणों से सज्जित; कर्ण-आभरण-निर्भात—कानों की मणियों की किरणों से प्रकाशित; कपोल—कपोल; श्री-मुख-अम्बुजाम्—जिसका सुन्दर कमल मुख; काञ्ची-कलाप-वलय—आभूषण यथा कमर की करधनी तथा हाथ के बाजूबंद; हार-नूपुर—वक्षस्थल पर हार तथा पाँवों में पायल पहने; शोभिताम्—सुशोभित; कौस्तुभ-आभरणाम्—जिनका वक्षस्थल कौस्तुभ मणि से अलंकृत था; लक्ष्मीम्—लक्ष्मी; विभ्रतीम्—चलायमान; वन-मालिनीम्—फूलों की मालाएँ पहने; सुदर्शन-आदिभिः—सुदर्शन चक्र आदि धारण किये; स्व-अस्त्रैः—अपने हथियारों से; मूर्तिमद्भिः—अपने आदि रूप में; उपासिताम्—पूजित होकर; तुष्टाव—संतुष्ट; देव-प्रवरः—देवताओं में प्रमुख; स-शर्वः—शिवजी के सहित; पुरुषम् परम्—परम पुरुष को; सर्व-अभरणैः—सभी देवताओं के साथ-साथ; साकम्—सहित; सर्व-अङ्गैः—शरीर के सारे भागों से; अवनिम्—भूमि पर; गतैः—गिरकर प्रणाम किया ।

शिवजी सहित ब्रह्माजी ने भगवान् के निर्मल शारीरिक सौन्दर्य को देखा जिनका श्यामल

शरीर मरकत मणि के समान है, जिनकी आँखें कमल के फूल के भीतरी भाग जैसी लाल-लाल हैं, जो पिघले सोने जैसे पीले वस्त्र धारण किये हैं और जिनका समूचा शरीर आकर्षक ढंग से सज्जित है। उन्होंने उनके सुन्दर मुस्काते कमल जैसे मुखमण्डल को देखा जिसके ऊपर बहुमूल्य रत्नों से जड़ित मुकुट था। भगवान् की भौहें आकर्षक हैं और उनकी गालों पर कान के कुण्डल शोभित रहते हैं। ब्रह्मा जी तथा शिव जी ने भगवान् की कमर में पेटी, उनकी बाहों में बाजूबंद, वक्षस्थल पर हार और पाँवों में पायल देखे। भगवान् फूल की मालाओं से अलंकृत थे, उनकी गर्दन में कौस्तुभ मणि अलंकृत थी और उनके साथ लक्ष्मीजी थीं तथा वे चक्र, गदा इत्यादि निजी आयुध लिए हुए थे। जब ब्रह्मा जी ने शिवजी तथा अन्य देवताओं के साथ भगवान् के स्वरूप को इस तरह देखा तो सब ने भूमि पर गिरकर उन्हें प्रणाम किया।

श्रीब्रह्मोवाच

अजातजन्मस्थितिसंयमाया-

गुणाय निर्वाणसुखार्णवाय ।

अणोरणिम्नेऽपरिगण्यधाम्ने

महानुभावाय नमो नमस्ते ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

श्री-ब्रह्मा उवाच—ब्रह्माजी ने कहा; अजात-जन्म-स्थिति-संयमाय— भगवान् को, जो कभी उत्पन्न नहीं होता, किन्तु जिनका विविध अवतारों में प्राकट्य कभी बन्द नहीं होता; अगुणाय— प्रकृति के तीनों गुणों से कभी भी प्रभावित नहीं होने वाले; निर्वाण-सुख-अर्णवाय— भौतिक सृष्टि से परे शाश्वत आनन्द के सागर को; अणोः अणिम्ने— अणु से भी छोटा; अपरिगण्य-धाम्ने— जिनके शारीरिक स्वरूप की अनुभूति भौतिक चिन्तन से नहीं की जाती; महा-अनुभावाय— जिनका अस्तित्व अचिन्त्य है; नमः— नमस्कार; नमः— फिर से नमस्कार; ते— तुमको।

ब्रह्माजी ने कहा : यद्यपि आप अजन्मा हैं, किन्तु अवतार के रूप में आपका प्राकट्य तथा अन्तर्धान सदैव चलता रहता है। आप सदैव भौतिक गुणों से मुक्त रहते हैं और सागर के समान दिव्य आनन्द के आश्रय हैं। अपने दिव्य स्वरूप में नित्य रहते हुए आप अत्यन्त सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं। अतएव हम आपको जिनका अस्तित्व अचिन्त्य है। सादर नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य : भगवद्गीता (४.६) में भगवान् कहते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥

“यद्यपि मैं अजन्मा हूँ और मेरा दिव्य शरीर कभी नष्ट नहीं होता, यद्यपि मैं सारे सचेतन जीवों का

स्वामी हूँ, फिर भी मैं प्रत्येक युग में अपने मूल दिव्य रूप में प्रकट होता हूँ।” भगवद्गीता के निम्नलिखित श्लोक (४.७) में भगवान् कहते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

“जब-जब धर्म का पतन होता है और अधर्म का प्राधान्य हो जाता है तब-तब हे भारत! मैं स्वयं अवतरित होता हूँ।” इस तरह यद्यपि भगवान् अजन्मा हैं, किन्तु कृष्ण तथा राम जैसे अवतारों के विविध रूपों में प्रकट होते रहते हैं। चूँकि उनके अवतार नित्य हैं अतएव इन अवतारों द्वारा सम्पन्न किये गये कार्यकलाप भी नित्य होते हैं। भगवान् का प्राकट्य इसलिए नहीं होता कि सामान्य जीवों की तरह उन्हें कर्म के द्वारा बाध्य होकर विशेष शरीर धारण करना होता है। यह समझना होगा कि भगवान् का शरीर तथा उनके कार्यकलाप दिव्य हैं क्योंकि वे भौतिक प्रकृति के गुणों के कल्मष से मुक्त होते हैं। ये लीलाएँ भगवान् के लिए दिव्य आनन्द हैं। अपरिगण्य-धाम्ने शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भगवान् द्वारा विभिन्न अवतारों में प्रकट होने की कोई सीमा नहीं है। ये सारे अवतार सच्चिदानन्द स्वरूप होते हैं।

रूपं तवैतत्पुरुषर्षभेज्यं

श्रेयोऽर्थिभिर्वैदिकतान्त्रिकेण ।

योगेन धातः सह नस्त्रिलोकान्

पश्याम्यमुष्मिन्नु ह विश्वमूर्तौ ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

रूपम्—रूप; तव—तुम्हारा; एतत्—यह; पुरुष-ऋषभ—हे पुरुषों में श्रेष्ठ; इज्यम्—पूज्य; श्रेयः—चरम कल्याण; अर्थिभिः—कामना करने वाले व्यक्तियों द्वारा; वैदिक—वैदिक आदेशों के अनुसार; तान्त्रिकेण—नारद पञ्चरात्र जैसे तंत्रों के अनुयायियों द्वारा अनुभव किया गया; योगेन—योगाभ्यास द्वारा; धातः—हे परम नियन्ता; सह—साथ; नः—हम (देवताओं) को; त्रि-लोकान्—तीनों लोकों को नियंत्रित करने वाले; पश्यामि—प्रत्यक्ष देखता हूँ; अमुष्मिन्—आप में; उ—ओह; ह—पूर्णतया प्रकट; विश्व-मूर्तौ—विश्व रूप आप में।

हे पुरुषश्रेष्ठ, हे परम नियन्ता! जो लोग सचमुच परम सौभाग्य की कामना करते हैं, वे वैदिक तंत्रों के अनुसार आपके इसी रूप की पूजा करते हैं। हे प्रभु! हम आपमें तीनों लोकों को देख सकते हैं।

तात्पर्य : वैदिक मंत्रों का कथन है—यस्मिन् विज्ञाते सर्वम् एवं विज्ञातं भवति। जब भक्त अपने

ध्यान में भगवान् का दर्शन करता है या जब वह उनका साक्षात् दर्शन करता है तब वह इस ब्रह्माण्ड के भीतर की प्रत्येक वस्तु से अवगत हो जाता है। निस्सन्देह, उसके लिए कुछ भी अज्ञात नहीं रहता। इस भौतिक जगत की प्रत्येक वस्तु उस भक्त को पूरी तरह प्रकट हो जाती है, जिसने भगवान् के दर्शन कर लिये हैं। अतएव भगवद्गीता का (४.३४) उपदेश है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ।

“गुरु के पास जाकर सत्य जानने का प्रयत्न करो। उनसे विनीत होकर प्रश्न पूछो और उनकी सेवा करो। स्वरूपसिद्ध व्यक्ति तुम्हें ज्ञान प्रदान कर सकता है क्योंकि उसने सत्य के दर्शन किये हैं।” ब्रह्माजी ऐसे ही स्वरूपसिद्ध महात्मा हैं (स्वयम्भूनारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः)। अतएव मनुष्य को चाहिए कि ब्रह्मा से चली आने वाली शिष्य-परम्परा को स्वीकार करे। तभी वह भगवान् को पूरी तरह समझ सकेगा। यहाँ पर विश्वमूर्तौ शब्द संकेत करता है कि भगवान् के स्वरूप में प्रत्येक वस्तु स्थित है। जो उनकी पूजा करने में समर्थ है, वह प्रत्येक वस्तु को उनमें और प्रत्येक वस्तु में उनको देख सकता है।

त्वय्यग्र आसीत्त्वयि मध्य आसीत्

त्वय्यन्त आसीदिदमात्मतन्त्रे ।

त्वमादिरन्तो जगतोऽस्य मध्यं

घटस्य मृत्स्नेव परः परस्मात् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

त्वयि—तुम (भगवान्) में; अग्रे—प्रारम्भ में; आसीत्—था; त्वयि—तुममें; मध्ये—मध्य में; आसीत्—था; त्वयि—तुममें; अन्ते—अन्त में; आसीत्—था; इदम्—यह सारा दृश्य जगत; आत्म-तन्त्रे—पूर्णतया आपके नियंत्रण में; त्वम्—तुम; आदिः—आदि; अन्तः—अन्त; जगतः—दृश्य जगत के; अस्य—इस; मध्यम्—मध्य; घटस्य—मिट्टी के पात्र का; मृत्स्ना इव—मिट्टी के समान; परः—दिव्य; परस्मात्—प्रमुख होने के कारण।

सदैव पूर्ण स्वतंत्र रहने वाले मेरे प्रभु! यह सारा दृश्य जगत आपसे उत्पन्न होता है, आप पर टिका रहता है और आपमें तल्लीन हो जाता है। आप ही प्रत्येक वस्तु के आदि, मध्य तथा अन्त हैं जिस तरह पृथ्वी मिट्टी के पात्र का कारण है; वह उस पात्र को आधार प्रदान करती है और जब पात्र टूट जाता है, तो अन्ततः उसे अपने में मिला लेती है।

त्वं माययात्माश्रयया स्वयेदं
निर्माय विश्वं तदनुप्रविष्टः ।
पश्यन्ति युक्ता मनसा मनीषिणो
गुणव्यवायेऽप्यगुणं विपश्चितः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—आप; मायया—अपनी नित्य शक्ति द्वारा; आत्म-आश्रयया—जिसका अस्तित्व आपकी शरण के अधीन है; स्वया—आपसे उद्भूत; इदम्—यह; निर्माय—उत्पन्न करने के लिए; विश्वम्—सारे ब्रह्माण्ड को; तत्—उसमें; अनुप्रविष्टः—आप प्रवेश करते हैं; पश्यन्ति—वे देखते हैं; युक्ताः—आपके सम्पर्क में रहने वाले व्यक्ति; मनसा—मन से; मनीषिणः—उच्च चेतना वाले लोग; गुण—भौतिक गुणों के; व्यवाये—रूपान्तर में; अपि—यद्यपि; अगुणम्—भौतिक तत्त्वों से अछूता; विपश्चितः—शास्त्र के सत्य से भलीभाँति अभिज्ञ लोग ।

हे परब्रह्मा! आप अपने में स्वतंत्र हैं और दूसरों से सहायता नहीं लेते। आप अपनी शक्ति से इस दृश्य जगत का सृजन करके इसमें प्रवेश कर जाते हैं। जो लोग कृष्णभावनामृत में बड़े-चढ़े हैं, जो प्रामाणिक शास्त्रों से भलीभाँति परिचित हैं और जो भक्तियोग के अभ्यास से सारे भौतिक कल्मष से शुद्ध हो जाते हैं, वे यह शुद्ध मन से देख सकते हैं कि आप भौतिक गुणों के रूपान्तरों के भीतर रहते हुए भी इन गुणों से अछूते रहते हैं।

तात्पर्य : भगवद्गीता (९.१०) में भगवान् कहते हैं—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।

हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ।

“हे कुन्तीपुत्र! यह प्रकृति मेरे निर्देश में कार्य करती है और सारे चर तथा अचर प्राणियों को उत्पन्न करती है। इसके आदेश से यह जगत बारम्बार उत्पन्न और विनष्ट होता है।” भौतिक शक्ति समग्र दृश्य जगत का सृजन, पालन तथा संहार उन भगवान् के आदेशों से करती है, जो इस ब्रह्माण्ड में गर्भोदकशायी विष्णु के रूप में प्रवेश करते हैं, किन्तु भौतिक गुणों से अछूते रहते हैं। भगवद्गीता में भगवान् माया अर्थात् बहिरंगा शक्ति को जो यह भौतिक जगत उत्पन्न करती है मम माया कहते हैं क्योंकि यह शक्ति भगवान् के पूर्ण नियंत्रण में कार्य करती है। इन तथ्यों की अनुभूति उन्हीं व्यक्तियों को हो सकती है, जो वैदिक ज्ञान में पटु हैं और कृष्णभावनामृत में बड़े-चढ़े हैं।

यथाग्निमेधस्यमृतं च गोषु
भुव्यन्नमम्बूह्यमने च वृत्तिम् ।
योगैर्मनुष्या अधियन्ति हि त्वां

गुणेषु बुद्ध्या कवयो वदन्ति ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस तरह; अग्निम्—अग्नि; एधसि—काष्ठ में; अमृतम्—अमृत तुल्य दुग्ध; च—तथा; गोषु—गायों में; भुवि—भूमि पर; अन्नम्—अनाज; अम्बु—जल; उद्यमने—उद्यम में; च—भी; वृत्तिम्—जीविका; योगैः—भक्तियोग के अभ्यास से; मनुष्याः—लोग; अधियन्ति—प्राप्त करते हैं; हि—निस्सन्देह; त्वाम्—तुमको; गुणेषु—गुणों में; बुद्ध्या—बुद्धि से; कवयः—महापुरुष; वदन्ति—कहते हैं।

जिस प्रकार काठ से अग्नि, गाय के थन से दूध, भूमि से अन्न तथा जल और औद्योगिक उद्यम से जीविका के लिए समृद्धि प्राप्त की जा सकती है उसी तरह इस भौतिक जगत में मनुष्य भक्तियोग के अभ्यास द्वारा आपकी कृपा प्राप्त कर सकता है या बुद्धि से आपके पास पहुँच सकता है। जो पुण्यात्मा हैं, वे इसकी पुष्टि करते हैं।

तात्पर्य : यद्यपि भगवान् निर्गुण हैं और इस भौतिक जगत के भीतर नहीं पाये जाते, तथापि सारा भौतिक जगत उनसे व्याप्त है जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है (*मया ततमिदं सर्वम्*)। यह भौतिक जगत भगवान् की भौतिक शक्ति के प्रसार के अतिरिक्त कुछ नहीं है और सारा जगत उन्हीं पर टिका है (*मत्स्थानि सर्वभूतानि*)। फिर भी भगवान् को यहाँ पर नहीं पाया जा सकता (*न चाहं तेष्ववस्थितः*)। किन्तु भक्तियोग के अभ्यास द्वारा भक्त भगवान् का दर्शन कर सकता है। सामान्यतया कोई व्यक्ति तब तक भक्तियोग का अभ्यास प्रारम्भ नहीं करता जब तक उसने पूर्वजन्म में इसका अभ्यास न किया हो। इसके अतिरिक्त गुरु तथा कृष्ण की कृपा से ही भक्तियोग शुरू किया जा सकता है। *गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्तिलता-बीज*। भक्तियोग का बीज गुरु तथा भगवान् कृष्ण की कृपा से प्राप्य है।

केवल भक्तियोग के अभ्यास से ही भगवान् की कृपा प्राप्त की जा सकती है और उनका साक्षात्कार किया जा सकता है (*प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति*) भगवान् को कर्म, ज्ञान या योग जैसी अन्य विधियों से नहीं देखा जा सकता। मनुष्य भक्तियोग का अनुशीलन गुरु के निर्देशन में कर सकता है (*श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद-सेवनम्*)। तब भक्त भगवान् को इस जगत में भी देख सकता है यद्यपि वे अदृश्य रहते हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में (*भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः*) तथा *श्रीमद्भागवत* में (*भक्त्याहमेकया ग्राह्यः*) हुई है। इस प्रकार भक्ति के द्वारा भगवान् की अनुकम्पा प्राप्त की जा सकती है यद्यपि अभक्तों को वे न तो दिखते हैं न ही उनकी समझ में आते हैं।

इस श्लोक में भक्तियोग के अनुशीलन की तुलना कई भौतिक कार्यकलापों से की गई है। काष्ठ

को रगड़ने से अग्नि प्राप्त हो सकती है, धरती को खोदने से अन्न तथा जल मिल सकता है और गाय के थन को दुहने से अमृततुल्य दूध प्राप्त हो सकता है। दूध की तुलना अमृत से की गई है, जिसे पीकर अमर बना जा सकता है। हाँ, केवल दूध पीने से कोई अमर नहीं हो जाता, किन्तु दूध आयु की अवधि को बढ़ा सकता है। आधुनिक सभ्यता में लोग दूध को महत्त्वपूर्ण नहीं मानते अतएव वे दीर्घजीवी नहीं होते। यद्यपि इस युग में लोग एक सौ वर्षों तक जीवित रह सकते हैं, किन्तु अधिक मात्रा में दूध न पीने के कारण उनकी आयु घट जाती है। यह कलियुग का लक्षण है। कलियुग में लोग दूध पीने की अपेक्षा पशु का वध करके उसका मांस खाना अधिक अच्छा मानते हैं। *भगवद्गीता* में दिये गये उपदेशों में भगवान् गोरक्षा का उपदेश देते हैं। गायों की सुरक्षा करनी चाहिए, उनसे दूध प्राप्त करना चाहिए और इस दूध के विविध पकवान बनाने चाहिए। मनुष्य को चाहिए कि पर्याप्त दूध पिये। इससे उसकी आयु बढ़ सकती है, मस्तिष्क विकसित हो सकता है, वह भक्ति कर सकेगा और अन्ततः भगवान् की कृपा प्राप्त कर सकता है। जिस प्रकार अन्न तथा जल प्राप्त करने के लिए धरती को खोदना आवश्यक है उसी प्रकार गायों को सुरक्षा प्रदान करना और उनके थनों से अमृत-तुल्य दूध प्राप्त करना आवश्यक है।

इस युग के लोग सुखी जीवन के लिए औद्योगिक उद्यमों में प्रवृत्ति रखते हैं, किन्तु वे उस भक्ति को करने से इनकार करते हैं जिससे उन्हें भगवद्धाम वापस जाकर जीवन का अन्तिम लक्ष्य प्राप्त हो सकता है। दुर्भाग्यवश, जैसाकि कहा गया है—*न ते विदुः स्वार्थ-गतिं हि विष्णुं दुराशया ये बहिरर्थमानिनः*। आध्यात्मिक ज्ञान से विहीन लोग यह नहीं जानते कि जीवन का अन्तिम लक्ष्य भगवद्धाम को वापस जाना है। जीवन के इस उद्देश्य को भुलाकर वे निराशा तथा हताशा में कठोर श्रम करते रहते हैं। (*मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः*)। तथाकथित वैश्य लोग—उद्योगपति या व्यापारी—बड़े-बड़े औद्योगिक उद्यमों में लगे हैं, किन्तु वे अन्न तथा दूध में कोई रुचि नहीं रखते। किन्तु जैसाकि यहाँ पर संकेत किया गया है, मरुस्थल में भी धरती खोदकर जल प्राप्त करके अन्न उत्पन्न किया जा सकता है। जब हम अन्न तथा तरकारी उत्पन्न करते हैं, तो गायों को संरक्षण प्राप्त हो सकता है और इन गायों से प्रचुर दूध मिल सकता है। पर्याप्त दूध मिलने से तथा इसे अन्न और तरकारी के साथ मिलाकर हम सैंकड़ों अमृतमय व्यंजन तैयार कर सकते हैं। हम इन व्यंजनों को खा सकते हैं

और औद्योगिक उद्यमों से तथा बेकारी से बच सकते हैं।

कृषि तथा गोरक्षा निष्पाप होने के साधन हैं और इन से भक्ति के प्रति आकृष्ट हुआ जा सकता है। जो लोग पापी हैं, वे भक्ति के प्रति अनुरक्त नहीं होते। जैसाकि *भगवद्गीता* (७.२८) में कहा गया है—

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।

ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥

“जिन लोगों ने पूर्वजन्मों में तथा इस जन्म में पुण्य कार्य किये हैं, जिनके पाप समूल नष्ट हो चुके हैं तथा जो मोह के द्वन्द्व से मुक्त हैं, वे संकल्पपूर्वक मेरी सेवा में प्रवृत्त होते हैं।” इस कलियुग में अधिकांश लोग पापी, अल्पायु, अभागे तथा विशुब्ध हैं (*मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः*) उनके लिए चैतन्य महाप्रभु ने सलाह दी है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

“इस कलह तथा कपट के युग में उद्धार का एकमात्र साधन भगवान् के पवित्र नाम का जप है। इसका कोई अन्य रास्ता नहीं है। कोई अन्य रास्ता नहीं है। कोई अन्य रास्ता नहीं है।”

तं त्वां वयं नाथ समुज्जिहानं

सरोजनाभातिचिरेप्सितार्थम् ।

दृष्ट्वा गता निर्वृतमद्य सर्वे

गजा दवार्ता इव गाङ्गमम्भः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तम्—हे भगवान्; त्वाम्—आपको; वयम्—हम सभी; नाथ—हे स्वामी; समुज्जिहानम्—अपनी समस्त महिमा के साथ अब हमारे समक्ष प्रकट होने वाले; सरोज-नाभ—कमल फूल के समान नाभि वाले भगवान् अथवा जिनकी नाभि से कमल निकलता है; अति-चिर—दीर्घकाल तक; ईप्सित—चाहते हुए; अर्थम्—जीवन के चरम लक्ष्य के लिए; दृष्ट्वा—देखकर; गताः—अपनी दृष्टि के अन्तर्गत; निर्वृतम्—दिव्य सुख; अद्य—आज; सर्वे—हम सभी; गजाः—हाथी; दव-अर्ताः—जंगल की अग्नि से पीड़ित; इव—सदृश; गाङ्गम् अम्भः—गंगा के जल से।

जंगल की अग्नि से पीड़ित हाथी गंगाजल प्राप्त होने पर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। इसी प्रकार, हे प्रभु! कमलनाभ प्रभु! चूँकि आप हमारे समक्ष अब प्रकट हुए हैं अतएव हम दिव्य सुख का अनुभव कर रहे हैं। हमें आपके दर्शन की दीर्घकाल से आकांक्षा थी अतएव आपका दर्शन

पाकर हमने अपने जीवन के चरम लक्ष्य को पा लिया है।

तात्पर्य : भगवद्भक्त भगवान् का साक्षात् दर्शन पाने के लिए सदैव अत्यन्त उत्सुक रहते हैं, किन्तु वे कभी यह माँग पेश नहीं करते कि भगवान् उनके समक्ष आये क्योंकि भक्त ऐसी माँग को भक्ति के विरुद्ध मानता है। श्री चैतन्य महाप्रभु ने शिक्षाष्टक में यही पाठ पढ़ाया है। *अदर्शनान् मर्महतां करोतु वा।* भक्त भगवान् का साक्षात्कार करने के लिए सदैव उत्सुक रहता है, किन्तु यदि जन्म-जन्मातर तक भगवान् के दर्शन न होने से उसका हृदय टूट भी जाये तो भी वह भगवान् से प्रकट होने की माँग कभी नहीं करेगा। यह शुद्ध भक्ति का लक्षण है। अतएव इस श्लोक में *अतिचिरईप्सितार्थम्* शब्द आया है, जिसका अर्थ है कि भक्त भगवान् का दर्शन पाने के लिए दीर्घ समय से आकांक्षा करता रहता है। यदि भगवान् स्वेच्छा से भक्त के समक्ष प्रकट होते हैं, तो वह अत्यन्त सुख का अनुभव करता है, जिस प्रकार ध्रुव महाराज ने भगवान् का प्रत्यक्ष दर्शन पाने पर किया था। जब ध्रुव महाराज ने भगवान् को देखा तो उन्हें कोई वर माँगने की इच्छा नहीं हुई। वे भगवान् को देख कर ही इतने तुष्ट हो गये थे कि उन्होंने भगवान् से कोई वर माँगना नहीं चाहा (*स्वामिन् कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे*)। शुद्ध भक्त चाहे भगवान् का दर्शन कर सके या नहीं, वह सदैव इस आशा से भगवान् की सेवा-भक्ति करता है कि कभी न कभी वे उस पर प्रसन्न होकर प्रकट होंगे जिससे उसे उनका साक्षात् दर्शन हो सकेगा।

स त्वं विधत्स्वाखिललोकपाला

वयं यदर्थास्तव पादमूलम् ।

समागतास्ते बहिरन्तरात्मन्

किं वान्यविज्ञाप्यमशेषसाक्षिणः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; त्वम्—आप; विधत्स्व—कृपया जो आवश्यक हो करें; अखिल-लोक-पालाः—देवता, इस ब्रह्माण्ड के विभिन्न विभागों के निर्देशक; वयम्—हम सभी; यत्—जो; अर्थाः—प्रयोजन; तव—आपके; पाद-मूलम्—चरणकमलों पर; समागताः—हम आये हैं; ते—आपको; बहिः-अन्तः-आत्मन्—हे सबके परमात्मा, हे बाह्य तथा अन्तर के सतत साक्षी; किम्—क्या; वा—अथवा; अन्य-विज्ञाप्यम्—आपको सूचित करते हैं; अशेष-साक्षिणः—हर वस्तु के साक्षी तथा ज्ञाता।

हे भगवान्! हम विविध देवता, इस ब्रह्माण्ड के निर्देशक आपके चरणकमलों के निकट आये हैं। जिस प्रयोजन से हम आये हैं कृपया उसे पूरा करें। आप भीतर तथा बाहर से हर वस्तु के साक्षी हैं। आपसे कुछ भी अज्ञात नहीं है, अतएव आपको किसी बात के लिए पुनः सूचित करना व्यर्थ है।

तात्पर्य : जैसाकि *भगवद्गीता* (१३.३) में कहा गया है—*क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।* जीवात्माएँ अपने-अपने शरीर की स्वामी हैं, किन्तु भगवान् सभी शरीरों के स्वामी हैं। चूँकि वे हर एक के शरीर के साक्षी हैं, अतएव उनसे कुछ भी छिपा नहीं है। वे जानते हैं कि हमें क्या चाहिए। अतएव हमारा कर्तव्य है कि गुरु के निर्देशन में निष्ठापूर्वक भक्ति करें। भक्ति करने के लिए हमें जो भी चाहिए उसकी पूर्ति कृपा-पूर्वक कृष्ण करेंगे। कृष्णभावनामृत आन्दोलन में हमें कृष्ण तथा गुरु के आदेशों मात्र को पूरा करना होता है। तब हमारी सारी आवश्यकताएँ हमारे न माँगने पर भी कृष्ण द्वारा पूरी हो जायेंगी।

अहं गिरित्रश्च सुरादयो ये
दक्षादयोऽग्नेरिव केतवस्ते ।
किं वा विदामेश पृथग्विभाता
विधत्स्व शं नो द्विजदेवमन्त्रम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं (ब्रह्मा); गिरित्रः—शिवजी; च—भी; सुर-आदयः—तथा सारे देवता; ये—जैसे भी हम हैं; दक्ष-आदयः—महाराज दक्ष इत्यादि; अग्नेः—अग्नि के; इव—सदृश; केतवः—चिनगारियाँ; ते—तुम्हारा; किम्—क्या; वा—अथवा; विदाम—हम समझ सकते हैं; ईश—हे प्रभु; पृथक्-विभाताः—आपसे स्वतंत्र होकर; विधत्स्व—हमें प्रदान करें; शम्—सौभाग्य; नः—हमारा; द्विज-देव-मन्त्रम्—ब्राह्मणों तथा देवताओं के लिए उपयुक्त मोक्ष का साधन।

मैं (ब्रह्मा), शिवजी तथा सारे देवताओं के साथ-साथ, दक्ष जैसे प्रजापति भी चिनगारियाँ मात्र हैं, जो मूल अग्नि स्वरूप आपके द्वारा प्रकाशित हैं। चूँकि हम आपके कण हैं अतएव हम अपनी कुशलता के विषय में समझ ही क्या सकते हैं? हे परमेश्वर! हमें मोक्ष का वह साधन प्रदान करें जो ब्राह्मणों तथा देवताओं के लिए उपयुक्त हो।

तात्पर्य : इस श्लोक में *द्विजदेवमन्त्रम्* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मंत्र शब्द का अर्थ है “जो भौतिक जगत से उद्धार करता है।” इस भौतिक जगत से केवल द्विज (ब्राह्मण) तथा देव (देवता) ही भगवान् के आदेशानुसार मोक्ष पा सकते हैं। भगवान् जो कुछ भी बोलते हैं वह मंत्र है और बद्धजीवों को मानसिक चिन्तन से उद्धार कराने के लिए पर्याप्त है। सारे बद्धजीव जीवन-संघर्ष में लगे हुए हैं (*मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति*)। इस संघर्ष से मोक्ष सर्वोच्च लाभ है, किन्तु भगवान् से मंत्र प्राप्त किये बिना मोक्ष असम्भव है। आदि मंत्र गायत्री मंत्र है। अतएव संस्कार के बाद जब कोई व्यक्ति ब्राह्मण (द्विज) बनने के योग्य हो जाता है, तो उसे गायत्री मंत्र प्रदान किया जाता है। मात्र गायत्री मंत्र

के जप से मनुष्य मोक्ष पा सकता है। किन्तु यह मंत्र केवल ब्राह्मणों तथा देवताओं के लिए ही उपयुक्त होता है। कलियुग में हम सभी अत्यन्त कठिन स्थिति में हैं जिसमें ऐसे उचित मंत्र की आवश्यकता है, जो हमें इस युग के संकटों से उबार सके। अतएव भगवान् अपने चैतन्य-अवतार में हमें हरे कृष्ण मंत्र प्रदान करते हैं—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

“इस कलह तथा कपट के युग में मोक्ष का एकमात्र साधन भगवान् के पवित्र नाम का जप है। इसके अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग नहीं है, कोई अन्य मार्ग नहीं है, कोई अन्य मार्ग नहीं है।” शिक्षाष्टक में भगवान् चैतन्य कहते हैं—*परं विजयते श्रीकृष्ण-सङ्कीर्तनम्*—श्रीकृष्ण सङ्कीर्तन की जय हो। हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे—यह महामंत्र स्वयं भगवान् जपते हैं, जिन्होंने हमें मोक्ष के लिए यह मंत्र प्रदान किया है।

हम इस संसार के संकटों से उद्धार पाने का कोई साधन नहीं खोज सकते। यहाँ तो ब्रह्मा तथा शिवजी जैसे देवता एवं दक्ष जैसे प्रजापति भी उन परमेश्वर के समक्ष प्रकाशमान चिनगारी के तुल्य हैं जिनकी तुलना महान् अग्नि से की जाती है। चिनगारियाँ तभी तक सुन्दर लगती हैं जब तक वे अग्नि में रहती हैं। उसी प्रकार हमें भगवान् के सान्निध्य में रहकर सदैव भक्ति में लगना चाहिए क्योंकि तभी हम सदा दीप्तिमान रह सकेंगे। ज्योंही हम भगवान् की सेवा से नीचे गिर जाते हैं हमारा तेज तथा हमारी चमक तुरन्त समाप्त हो जाएगी या कुछ काल के लिए रुक जाएगी। जब मूल अग्नि रूपी परमेश्वर की चिनगारी तुल्य हम सारे जीव इस जगत में बद्धजीव की स्थिति में आ गिरते हैं, तो हमें भगवान् से उसी तरह मंत्र ग्रहण करना चाहिए जैसाकि श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रदान किया जाता है। इस हरे कृष्ण मंत्र का उच्चारण करने से हम इस भौतिक जगत की सारी कठिनाइयों से मुक्त हो सकेंगे।

श्रीशुक उवाच

एवं विरिञ्चादिभिरीडितस्तद्

विज्ञाय तेषां हृदयं यथैव ।

जगाद जीमूतगभीरया गिरा

बद्धाञ्जलीन्संवृतसर्वकारकान् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच— श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; विरिञ्च-आदिभिः—ब्रह्मा इत्यादि सारे देवताओं द्वारा; ईडितः—पूजित; तत् विज्ञाय—आशा को जानकर; तेषाम्—उन सब का; हृदयम्—हृदय; यथा—जिस तरह; एव—निस्सन्देह; जगाद्—उत्तर दिया; जीमूत-गभीरया—बादलों की गरज के समान; गिरा—शब्दों से; बद्ध-अञ्जलीन्—हाथ जोड़कर खड़े देवताओं को; संवृत—संयमित; सर्व—सभी; कारकान्—इन्द्रियों को।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : जब ब्रह्मा समेत सारे देवताओं ने भगवान् की स्तुति की तो वे उनके वहाँ आने का प्रयोजन समझ गये। अतएव भगवान् ने बादल की गर्जना के समान गम्भीर वाणी में उन देवताओं को उत्तर दिया जो हाथ जोड़कर सावधानी से वहाँ खड़े थे।

एक एवेश्वरस्तस्मिन्सुरकार्ये सुरेश्वरः ।

विहर्तुकामस्तानाह समुद्रोन्मथनादिभिः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

एकः—अकेला; एव—निस्सन्देह; ईश्वरः—भगवान्; तस्मिन्—उस; सुर-कार्ये—देवताओं के कार्यों में; सुर-ईश्वरः—देवताओं के ईश्वर, भगवान्; विहर्तु—लीलाओं का आनन्द भोगने के लिए; कामः—इच्छा करते हुए; तान्—देवताओं से; आह—कहा; समुद्र-उन्मथन-आदिभिः—समुद्र-मन्थन के कार्यों से।

यद्यपि देवताओं के स्वामी भगवान् देवताओं के कार्यकलापों को स्वयं सम्पन्न करने में समर्थ थे फिर भी उन्होंने समुद्र-मन्थन की लीला का आनन्द उठाना चाहा। अतएव वे इस प्रकार बोले।

श्रीभगवानुवाच

हन्त ब्रह्मन्नहो शम्भो हे देवा मम भाषितम् ।

शृणुतावहिताः सर्वे श्रेयो वः स्याद्यथा सुराः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; हन्त—उनको सम्बोधित करते हुए; ब्रह्मन् अहो—हे ब्रह्माजी; शम्भो—हे शिवजी; हे—हे; देवाः—देवतागण; मम—मेरा; भाषितम्—कथन; शृणुत—सुनो; अवहिताः—ध्यानपूर्वक; सर्वे—तुम सभी; श्रेयः—कल्याण; वः—तुम सबका; स्यात्—हो; यथा—जिस तरह; सुराः—देवताओं के लिए।

भगवान् ने कहा! हे ब्रह्मा, शिव तथा अन्य देवताओ! तुम सभी ध्यानपूर्वक मेरी बात सुनो क्योंकि मैं जो कुछ कहूँगा उससे तुम सब का कल्याण होगा।

यात दानवदैतेयैस्तावत्सन्धिर्विधीयताम् ।

कालेनानुगृहीतैस्तैर्यावद्दो भव आत्मनः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

यात—सम्पन्न करो; दानव—दानवों के साथ; दैतेयैः—तथा असुरों के साथ; तावत्—तब तक; सन्धिः—सन्धि; विधीयताम्—सम्पन्न करो; कालेन—अनुकूल समय के द्वारा (या काव्येन—शुक्राचार्य द्वारा); अनुगृहीतैः—आशीष प्राप्त करते हुए; तैः—उन सब से; यावत्—जब तक; वः—तुम्हारा; भवः—सौभाग्य; आत्मनः—तुम सब का।

जब तक तुम उन्नति नहीं कर रहे ही, तुम सब को दानवों तथा असुरों के साथ सन्धि कर लेनी चाहिए क्योंकि सम्प्रति समय उनके अनुकूल है।

तात्पर्य : इस श्लोक के एक शब्द के दो पाठ हैं—कालेन तथा काव्येन। कालेन का अर्थ है “समय की कृपा से” तथा काव्येन का अर्थ है “शुक्राचार्य की कृपा से।” शुक्राचार्य दैत्यों के आध्यात्मिक गुरु हैं। असुरों तथा दैत्यों को दोनों ओर से लाभ था अतएव भगवान् ने देवताओं को सलाह दी कि वे तब तक के लिए उनसे सन्धि कर लें जब तक समय उनके अनुकूल न हो जाये।

अरयोऽपि हि सन्धेयाः सति कार्यार्थगौरवे ।
अहिमूषिकवद्देवा ह्यर्थस्य पदवीं गतैः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

अरयः—शत्रुगण; अपि—यद्यपि; हि—निस्सन्देह; सन्धेयाः—सन्धि के योग्य; सति—ऐसा होकर; कार्य-अर्थ-गौरवे—महत्त्वपूर्ण कर्तव्य के मामले में; अहि—सर्प; मूषिक—चूहा; वत्—सदृश; देवाः—हे देवताओ; हि—निस्सन्देह; अर्थस्य—हित का; पदवीम्—पद; गतैः—ऐसा होकर।

हे देवताओ! अपना हित इतना महत्त्वपूर्ण होता है कि मनुष्य को अपने शत्रुओं से सन्धि भी करनी पड़ सकती है। अपने हित (लाभ) के लिए मनुष्य को सर्प तथा चूहे के तर्क के अनुसार कार्य करना चाहिए।

तात्पर्य : एक बार एक साँप तथा एक चूहा एक पिटारी में पकड़ लिए गये। चूँकि चूहा सर्प का भोजन है अतएव सर्प के लिए यह सुनहरा अवसर था। किन्तु चूँकि दोनों ही पिटारी में बन्द थे अतएव यदि सर्प चूहे को खाता भी, तो वह बाहर निकलने में असमर्थ रहता। इसलिए सर्प ने चूहे से सन्धि करना बुद्धिमानी समझा और उसने चूहे से पिटारी में छेद करने के लिए कहा जिससे वे दोनों बाहर जा सकें। सर्प की योजना थी कि जब चूहा छेद बना लेगा तो सर्प चूहे को खाकर छेद से होकर पिटारी से निकल भागेगा। यही सर्प तथा चूहे का तर्क कहलाता है।

अमृतोत्पादने यत्नः क्रियतामविलम्बितम् ।
यस्य पीतस्य वै जन्तुर्मृत्युग्रस्तोऽमरो भवेत् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

अमृत-उत्पादने—अमृत उत्पन्न करने में; यत्नः—यत्न; क्रियताम्—करो; अविलम्बितम्—देर किये बिना, तुरन्त; यस्य—जिस अमृत के; पीतस्य—पीने वाले का; वै—निस्सन्देह; जन्तुः—जीव; मृत्यु-ग्रस्तः—यद्यपि आसन्न मृत्यु संकट में; अमरः—अमर; भवेत्—हो सकता है।

तुरन्त ही अमृत उत्पन्न करने का प्रयत्न करो जिसे पीकर मरणासन्न व्यक्ति अमर हो जाये।

क्षिप्त्वा क्षीरोदधौ सर्वा वीरुत्तृणलतौषधीः ।

मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् ॥ २२ ॥

सहायेन मया देवा निर्मन्थध्वमतन्द्रिताः ।

क्लेशभाजो भविष्यन्ति दैत्या यूयं फलग्रहाः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

क्षिप्त्वा—डालकर; क्षीर-उदधौ—क्षीरसागर में; सर्वाः—सभी प्रकार की; वीरुत्—लताएँ; तृण—घास; लता—वनस्पतियाँ; औषधीः—तथा दवाएँ; मन्थानम्—मथानी; मन्दरम्—मन्दर पर्वत को; कृत्वा—बनाकर; नेत्रम्—मथने की डोरी; कृत्वा—बनाकर; तु—लेकिन; वासुकिम्—वासुकि सर्प को; सहायेन—सहायक के साथ; मया—मेरे द्वारा; देवाः—सारे देवता; निर्मन्थध्वम्—मथते रहो; अतन्द्रिताः—सावधानी से, एकाग्र मन से; क्लेश-भाजः—कष्टों को बँटाने वाले; भविष्यन्ति—होंगे; दैत्याः—दैत्य; यूयम्—तुम सब; फल-ग्रहाः—वास्तविक फल का लाभ उठाने वाले।

हे देवताओ! क्षीरसागर में सभी प्रकार की वनस्पतियाँ, तृण, लताएँ तथा औषधियाँ डाल दो। तब मेरी सहायता से मन्दर पर्वत को मथानी तथा वासुकि को मथने की रस्सी बनाकर अविचल चित्त से क्षीरसागर का मन्थन करो। इत तरह से दैत्यगण श्रम कार्य में लग जायेंगे, किन्तु तुम देवताओं को वास्तविक फल—समुद्र से उत्पन्न अमृत—प्राप्त होगा।

तात्पर्य : ऐसा प्रतीत होता है कि जब दूध में सभी प्रकार की औषधियाँ, लताएँ, तृण तथा वनस्पतियाँ डालकर दूध को मथा जाता है, जिस तरह मक्खन निकालने के लिए दूध को मथा जाता है, तो वनस्पतियों तथा औषधियों के सक्रिय तत्व दूध से मिल जाते हैं और उसके परिणामस्वरूप अमृत मिलता है।

यूयं तदनुमोदध्वं यदिच्छन्त्यसुराः सुराः ।

न संरम्भेण सिध्यन्ति सर्वार्थाः सान्त्वया यथा ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

यूयम्—तुम सभी; तत्—वह; अनुमोदध्वम्—स्वीकार करो; यत्—जो भी; इच्छन्ति—वे चाहते हैं; असुराः—असुरगण; सुराः—हे देवताओ; न—नहीं; संरम्भेण—क्रुद्ध होने पर; सिध्यन्ति—सफल होते हैं; सर्व-अर्थाः—सारी वांछनाएँ; सान्त्वया—शान्तिपूर्वक सम्पन्न करने से; यथा—जिस तरह।

हे देवताओ! धैर्य तथा शान्ति से हर कार्य सम्पन्न किया जा सकता है, किन्तु यदि कोई क्रोध से क्षुब्ध रहे तो लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो पाती। अतएव असुरगण जो भी माँगें उनके प्रस्ताव को

स्वीकार कर लो ।

न भेतव्यं कालकूटाद्विषाज्जलधिसम्भवात् ।

लोभः कार्यो न वो जातु रोषः कामस्तु वस्तुषु ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; भेतव्यम्—डरना चाहिए; कालकूटात्—कालकूट से; विषात्—विष से; जलधि—क्षीरसागर से; सम्भवात्—प्रकट हुए; लोभः—लालच; कार्यः—कार्य; न—नहीं; वः—तुमको; जातु—किसी समय; रोषः—क्रोध; कामः—विषयवासना; तु—तथा; वस्तुषु—वस्तुओं में ।

क्षीरसागर से कालकूट नामक विष उत्पन्न होगा, किन्तु तुम्हें उससे डरना नहीं है और जब समुद्र के मन्थन से विविध उत्पाद प्राप्त हों तो तुम्हें उनको प्राप्त करने के लिए न तो लालच करना होगा, न ही उत्सुक होना होगा, और न ही क्रुद्ध होना होगा ।

तात्पर्य : ऐसा लगता है कि क्षीरसागर के मन्थन से अनेक वस्तुएँ उत्पन्न होंगी जिनमें विष, बहुमूल्य रत्न, अमृत तथा अनेक सुन्दरियाँ सम्मिलित हैं । किन्तु देवताओं को सलाह दी गई थी कि वे रत्नों या सुन्दरियों के प्रति लोभ न दिखायें अपितु धैर्यपूर्वक अमृत की प्रतीक्षा करें । वास्तविक उद्देश्य अमृत प्राप्त करना था ।

श्रीशुक उवाच

इति देवान्समादिश्य भगवान्पुरुषोत्तमः ।

तेषामन्तर्दधे राजन्स्वच्छन्दगतिरीश्वरः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; देवान्—सारे देवताओं को; समादिश्य—उपदेश देकर; भगवान्—भगवान्; पुरुष-उत्तमः—पुरुषों में श्रेष्ठ; तेषाम्—उन सब से; अन्तर्दधे—अन्तर्धान हो गये; राजन्—हे राजा; स्वच्छन्द—मुक्त; गतिः—गति वाले; ईश्वरः—भगवान् ।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : हे राजा परीक्षित! देवताओं को इस प्रकार से सलाह देकर समस्त जीवों में श्रेष्ठ, स्वच्छन्द रहने वाले भगवान् उनके समक्ष से अन्तर्धान हो गये ।

अथ तस्मै भगवते नमस्कृत्य पितामहः ।

भवश्च जग्मतुः स्वं स्वं धामोपेयुर्बलिं सुराः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

अथ—इसके बाद; तस्मै—उस; भगवते—भगवान् को; नमस्कृत्य—नमस्कार करके; पिता-महः—ब्रह्माजी; भवः च—तथा शिवजी; जग्मतुः—लौट गये; स्वम् स्वम्—अपने-अपने; धाम—घरों को; उपेयुः—पास गये; बलिम्—राजा बलि के; सुराः—अन्य सारे देवता ।

तब भगवान् को सादर नमस्कार करने के बाद ब्रह्मा जी तथा शिवजी अपने-अपने धामों को लौट गये। फिर सारे देवता महाराज बलि के पास गये।

दृष्ट्वारीनप्यसंयत्ताञ्जातक्षोभान्स्वनायकान् ।

न्यषेधद्वैत्यराट्श्लोक्यः सन्धिविग्रहकालवित् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; अरीन्—शत्रुओं को; अपि—यद्यपि; असंयत्तान्—लड़ने के किसी प्रयास बिना; जात-क्षोभान्—विक्षुब्ध हुए; स्व-नायकान्—अपने सेनानायकों को; न्यषेधत्—रोका; दैत्य-राट्—दैत्यों के सम्राट, महाराज बलि; श्लोक्यः—अत्यन्त सम्मानित तथा प्रमुख; सन्धि—समझौता कराने के लिए; विग्रह—तथा लड़ने के लिए; काल—समय; वित्—पूर्णतया अवगत।

दैत्यों में सर्वाधिक विख्यात महाराज बलि भलीभाँति जानते थे कि कब सन्धि करनी चाहिए और कब युद्ध करना चाहिए। इस तरह से यद्यपि उनके सेनानायक विक्षुब्ध थे और देवताओं का वध कर देना चाहते थे, किन्तु जब महाराज बलि ने देखा कि सारे देवता उनके पास आक्रमक प्रवृत्ति त्याग कर आ रहे हैं, तो उन्होंने अपने सेनानायकों को मना कर दिया कि वे देवताओं को मारें नहीं।

तात्पर्य : वैदिक शिष्टाचार कहता है—*गृहे शत्रुमपि प्राप्तं विश्वस्तमकुतोभयम्*। जब शत्रु अपने विपक्षी के घर आयें तो उनका स्वागत इस तरह से होना चाहिए कि वे यह भूल जायें कि दोनों पक्षों में शत्रुता है। बलि महाराज सन्धि करने तथा युद्ध करने की कला में दक्ष थे। अतः उन्होंने देवताओं का ठीक से स्वागत किया यद्यपि उनके सेनानायक विक्षुब्ध थे। इस तरह का व्यवहार पाण्डवों तथा कुरुओं के युद्ध के समय भी प्रचलित था। दिन के समय कौरव तथा पाण्डव पूरे बल से लड़ते थे, किन्तु जब दिन ढल जाता तो वे एक दूसरे के शिबिरों में मित्रों की तरह जाते और उनका स्वागत भी उसी रूप में होता था। ऐसे मैत्रीपूर्ण मिलानों में एक शत्रु दूसरे को मुँहमाँगी वस्तु देता था। ऐसी थी पद्धति।

ते वैरोचनिमासीनं गुप्तं चासुरयूथपैः ।

श्रिया परमया जुष्टं जिताशेषमुपागमन् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

ते—सभी देवता; वैरोचनिम्—विरोचन के पुत्र बलिराज को; आसीनम्—बैठा हुआ; गुप्तम्—सुरक्षित; च—तथा; असुर-यूथ-पैः—असुरों के सेनानायकों द्वारा; श्रिया—ऐश्वर्य से; परमया—परम; जुष्टम्—वर प्राप्त; जित-अशेषम्—समस्त जगतों का स्वामी; उपागमन्—के पास पहुँचे।

देवगण विरोचन के पुत्र बलि महाराज के पास गये और उनके निकट बैठ गये। उस समय

बलि महाराज की रक्षा असुरों के सेनानायकों द्वारा की जा रही थी और वे अत्यन्त ऐश्वर्यशाली थे। उन्होंने सारे ब्रह्माण्डों को जीत लिया था।

महेन्द्रः श्लक्ष्णया वाचा सान्त्वयित्वा महामतिः ।
अभ्यभाषत तत्सर्वं शिक्षितं पुरुषोत्तमात् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

महा-इन्द्रः—स्वर्ग का राजा इन्द्र; श्लक्ष्णया—अत्यन्त विनीत; वाचा—वचनों से; सान्त्वयित्वा—बलि महाराज को अत्यधिक प्रसन्न करते हुए; महा-मतिः—अत्यन्त बुद्धिमान् मनुष्य; अभ्यभाषत—सम्बोधित किया; तत्—वह; सर्वम्—सब कुछ; शिक्षितम्—जो कुछ सीखा था; पुरुष-उत्तमात्—भगवान् विष्णु से।

अत्यन्त बुद्धिमान् एवं देवताओं के राजा इन्द्र ने बलि महाराज को विनीत शब्दों से प्रसन्न कर लेने के बाद उन सारे प्रस्तावों को अत्यन्त विनयपूर्वक प्रस्तुत किया जिन्हें भगवान् विष्णु ने उसे सिखलाया था।

तत्त्वरोचत दैत्यस्य तत्रान्ये येऽसुराधिपाः ।
शम्बरोऽरिष्टनेमिश्च ये च त्रिपुरवासिनः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तत्—वे सारे शब्द; तु—लेकिन; अरोचत—अत्यन्त रुचिकर थे; दैत्यस्य—बलि महाराज के लिए; तत्र—तथा; अन्ये—अन्य; ये—जो; असुर-अधिपाः—असुरों के प्रधान; शम्बरः—शम्बर; अरिष्टनेमिः—अरिष्टनेमि; च—भी; ये—अन्य जो; च—तथा; त्रिपुर-वासिनः—त्रिपुर के सारे निवासी।

राजा इन्द्र द्वारा रखे गये प्रस्तावों को बलि महाराज ने, उनके सहायकों ने, जिनमें शम्बर तथा अरिष्टनेमि प्रमुख थे एवं त्रिपुर के अन्य सारे निवासियों ने तुरन्त ही मान लिया।

तात्पर्य : इस श्लोक से प्रकट होता है कि उच्च लोकों में भी इस लोक में व्याप्त राजनीति, राजनय, ठगी की प्रवृत्ति तथा दो पक्षों के बीच पाये जाने वाले व्यक्तिगत तथा सामाजिक समझौते पाये जाते हैं। देवतागण बलि महाराज के पास अमृत बनाने का प्रस्ताव लेकर गये थे और असुरों ने इसे यह सोचते हुए तुरन्त स्वीकार कर लिया कि देवता पहले से निर्बल हैं, अतएव जब अमृत निकलेगा तो असुर उसे प्राप्त करके अपने निजी कार्य में ला सकेंगे। निस्सन्देह, देवताओं के भी मनोभाव ऐसे ही थे। अन्तर इतना ही था कि विष्णु भगवान् देवताओं के पक्ष में थे क्योंकि वे उनके भक्त थे जबकि असुर विष्णु की कोई परवाह नहीं करते थे। सारे ब्रह्माण्ड में ही दो दल हैं—विष्णु दल या ईश्वर-भावनाभावित दल तथा ईश्वरविहीन दल। ईश्वरविहीन दल कभी भी सुखी या विजयी नहीं होता जबकि

ईश्वर-भावनाभावित दल सदैव सुखी तथा विजयी होता है।

ततो देवासुराः कृत्वा संविदं कृतसौहृदाः ।
उद्यमं परमं चक्रुरमृतार्थे परन्तप ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; देव-असुराः—देवता तथा असुर दोनों; कृत्वा—सम्पन्न करके; संविदम्—संकेत करते हुए; कृत-सौहृदाः—
उनके बीच सन्धि प्रस्ताव; उद्यमम्—उद्यम; परमम्—परम; चक्रुः—उन्होंने किया; अमृत-अर्थ—अमृत के हेतु; परन्तप—हे
शत्रुओं को दण्ड देने वाले महाराज परीक्षित।

हे शत्रुओं को दण्ड देने वाले महाराज परीक्षित! तब देवताओं तथा असुरों ने परस्पर सन्धि
कर ली और उन्होंने इन्द्र द्वारा प्रस्तावित अमृत उत्पन्न करने की योजना को बड़े ही उद्यमपूर्वक
कार्यान्वित करने की व्यवस्था की।

तात्पर्य : इस श्लोक का संविदम् शब्द महत्त्वपूर्ण है। देवता तथा असुर दोनों ने, कुछ काल के
लिए ही सही, युद्ध बन्द रखना स्वीकार कर लिया और वे अमृत उत्पन्न करने का प्रयास करने लगे।
इस प्रसंग में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टीका है—

संविद युद्धे प्रतिज्ञायामाचारे नाम्नि तोषणे।

सम्भाषणे क्रियाकारे संकेत ज्ञानयोरपि ॥

“संविद शब्द का प्रयोग कई अर्थों में किया जाता है—‘युद्ध में’, ‘वचन देने में’, ‘तुष्ट करने के
लिए’, ‘सम्बोधन में’, ‘व्यावहारिक कर्म के द्वारा’, ‘संकेत’ तथा ‘ज्ञान’।”

ततस्ते मन्दरगिरिमोजसोत्पाट्य दुर्मदाः ।
नदन्त उदधिं निन्युः शक्ताः परिघबाहवः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; ते—सारे देवता तथा असुर; मन्दर-गिरिम्—मन्दर पर्वत को; ओजसा—बलपूर्वक; उत्पाट्य—उखाड़कर;
दुर्मदाः—अत्यन्त शक्तिशाली तथा दक्ष; नदन्त—जोर-जोर से चिल्लाते; उदधिम्—समुद्र की तरफ; निन्युः—लाया; शक्ताः—
अत्यन्त शक्तिशाली; परिघ-बाहवः—लम्बी-लम्बी बलशाली भुजाओं वाले।

तत्पश्चात् देवताओं तथा अत्यन्त शक्तिशाली एवं लम्बी-लम्बी बलशाली भुजाओं वाले
असुरों ने अत्यन्त बलपूर्वक मन्दर पर्वत को उखाड़ा और जोरों से चिल्लाते हुए वे उसे क्षीरसागर
की ओर ले चले।

दूरभारोद्धहश्रान्ताः शक्रवैरोचनादयः ।

अपारयन्तस्तं वोढुं विवशा विजहुः पथि ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

दूर—दूर तक; भार-उद्धह—भारी बोझा ले जाने से; श्रान्ताः—थके हुए; शक्र—इन्द्र; वैरोचन-आदयः—तथा महाराज बलि इत्यादि; अपारयन्तः—असमर्थ; तम्—पर्वत को; वोढुम्—उठापाने; विवशाः—अशक्त; विजहुः—छोड़ दिया; पथि—रास्ते में।

विशाल पर्वत को दूर तक ले जाने के कारण राजा इन्द्र, महाराज बलि तथा अन्य सारे देवता

एवं असुर थक गये। पर्वत को ले जाने में असमर्थ होने के कारण उन्होंने उसे रास्ते में छोड़ दिया।

निपतन्स गिरिस्तत्र बहूनमरदानवान् ।

चूर्णयामास महता भारेण कनकाचलः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

निपतन्—गिरते हुए; सः—उस; गिरिः—पर्वत ने; तत्र—वहाँ; बहून्—अनेक; अमर-दानवान्—देवताओं तथा दानवों को; चूर्णयाम् आस—चूर्ण कर डाला; महता—भारी; भारेण—बोझ से; कनक-अचलः—सोने का पर्वत जिसे मन्दर कहते हैं।

यह पर्वत जो मन्दर के नाम से विख्यात था, अत्यन्त भारी था तथा सोने का बना था, वहीं

गिर पड़ा और इस ने अनेक देवताओं तथा असुरों को कुचल डाला।

तात्पर्य : स्वभाव से सोना पत्थर से भारी होता है। चूँकि मन्दर पर्वत सोने का बना था अतएव वह

पत्थर से भारी था; फलतः देवता तथा असुर उसे क्षीरसागर तक ठीक से नहीं ले जा सके।

तांस्तथा भग्नमनसो भग्नबाहूरुकन्धरान् ।

विज्ञाय भगवांस्तत्र बभूव गरुडध्वजः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

तान्—सारे देवता तथा असुर; तथा—तत्पश्चात्; भग्न-मनसः—हताश होकर; भग्न-बाहु—टूटी बाँहों वाले; ऊरु—जाँघें; कन्धरान्—तथा कंधे; विज्ञाय—जानते हुए; भगवान्—भगवान् विष्णु; तत्र—वहाँ; बभूव—प्रकट हुए; गरुड-ध्वजः—गरुड़ पर सवार।

देवता तथा असुर हताश तथा विक्षुब्ध थे और उनकी भुजाएँ, जाँघें तथा कंधे टूट गये थे।

अतएव गरुड़ की पीठ पर सवार सर्वज्ञ भगवान् वहाँ पर प्रकट हुए।

गिरिपातविनिष्पिष्टान्विलोक्यामरदानवान् ।

ईक्षया जीवयामास निर्जरान्निर्ब्रणान्यथा ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

गिरि-पात—मन्दर पर्वत के गिरने; विनिष्पिष्टान्—कुचले हुए; विलोक्य—देखकर; अमर—देवताओं; दानवान्—तथा दानवों को; ईक्षया—अपनी चितवन मात्र से; जीवयाम् आस—जीवित कर दिया; निर्जरान्—बिना किसी शोक के; निर्ब्रणान्—बिना घाव के; यथा—मानो।

यह देखकर कि अधिकांश दानव तथा देवता पर्वत के गिरने से कुचले गये हैं, भगवान् ने उन सब पर अपनी दृष्टि दौड़ाई और उन्हें जीवित कर दिया। इस प्रकार वे शोक से रहित हो गये और उनके शरीरों के घाव भी जाते रहे।

गिरिं चारोप्य गरुडे हस्तेनैकेन लीलया ।

आरुह्य प्रययावब्धि सुरासुरगणैर्वृतः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

गिरिम्—पर्वत को; च—भी; आरोप्य—रखकर; गरुडे—गरुड़ की पीठ पर; हस्तेन—हाथ से; एकेन—एक; लीलया—अपनी लीला के रूप में, आसानी से; आरुह्य—चढ़कर; प्रययौ—चले गये; अब्धिम्—क्षीरसागर; सुर-असुर-गणैः—देवताओं तथा असुरों द्वारा; वृतः—घिरे हुए।

फिर भगवान् ने पर्वत को अत्यन्त सरलतापूर्वक एक हाथ से उठाकर गरुड़ की पीठ पर रख दिया। तब वे स्वयं गरुड़ पर सवार हुए और देवताओं तथा असुरों से घिरे हुए क्षीरसागर चले गये।

तात्पर्य : यहाँ पर सर्वोपरि भगवान् के सर्वशक्तिमान होने का प्रमाण प्राप्त है। जीवों की दो श्रेणियाँ हैं—असुर तथा देवता—किन्तु भगवान् इन दोनों के ऊपर हैं। असुरगण सृष्टि के अवसर-वाद सिद्धान्त में विश्वास करते हैं, किन्तु देवता भगवान् के हाथों से बनी सृष्टि पर विश्वास करते हैं। यहाँ पर भगवान् की सर्वशक्तिमत्ता सिद्ध हो जाती है क्योंकि उन्होंने मन्दर पर्वत, असुरों तथा देवताओं को मात्र एक ही हाथ से उठाकर गरुड़ की पीठ पर रखा और सब को क्षीरसागर ले आये। देवता तथा भक्त इस घटना को यह जानते हुए कि भगवान् किसी भी वस्तु को चाहे वह कितनी भी भारी क्यों न हो उठा सकते हैं तुरन्त स्वीकार कर लेंगे, किन्तु दानव इस घटना को सुनकर यही कहेंगे कि यह पौराणिक है, यद्यपि वे भी देवताओं के साथ भगवान् द्वारा ले जाये गये थे। किन्तु क्या सर्वशक्तिमान भगवान् के लिए पर्वत उठाना कठिन है? चूँकि उन्होंने लाखों मन्दर-पर्वतों से युक्त असंख्य लोकों को तैरा रखा है, तो फिर वे उनमें से एक पर्वत को अपने हाथ से क्यों नहीं उठा सकते हैं? यह पौराणिक कथा नहीं है अपितु विश्वास करने वालों तथा अश्रद्धालुओं में यही अन्तर है कि देवता वैदिक साहित्य में वर्णित घटनाओं को सत्य के रूप में स्वीकार करते हैं, किन्तु दानव केवल विवाद करते हैं और कहते हैं कि ये ऐतिहासिक घटनाएँ मात्र पौराणिक कथाएँ हैं। असुरगण यही व्याख्या करना श्रेष्ठ समझते हैं कि इस जगत की सारी घटनाएँ “अकस्मात्” से होती हैं, किन्तु भक्तगण अथवा देवगण किसी भी घटना को

अवसरजनित नहीं मानते। प्रत्युत वे जानते हैं कि प्रत्येक घटना भगवान् की योजना के अनुसार घटती है। देवों तथा दानवों के बीच यही अन्तर है।

अवरोप्य गिरिं स्कन्धात्सुपर्णः पततां वरः ।

ययौ जलान्त उत्सृज्य हरिणा स विसर्जितः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

अवरोप्य—उतार कर; गिरिम्—पर्वत को; स्कन्धात्—अपने कंधे से; सुपर्णः—गरुड़; पतताम्—सारे पक्षियों में; वरः—सबसे महान् या शक्तिमान; ययौ—गया; जल-अन्ते—जहाँ जल है; उत्सृज्य—रखकर; हरिणा—भगवान् द्वारा; सः—वह (गरुड़); विसर्जितः—उस स्थान से चला गया।

तत्पश्चात् पक्षीराज गरुड़ ने अपने कन्धे से मन्दर पर्वत को उतारा और वे उसे जल के निकट ले गये। तब भगवान् ने उससे उस स्थान से चले जाने को कहा और वह चला गया।

तात्पर्य : भगवान् ने गरुड़ को उस स्थान से चले जाने का आदेश दिया क्योंकि सर्पराज वासुकि, जिसे मन्थन के लिए रस्सी बनाया जाना था, गरुड़ की उपस्थिति में वहाँ नहीं जा सकता था। भगवान् विष्णु का वाहन गरुड़ शाकाहारी नहीं है। वह बड़े-बड़े साँप खा जाता है। वासुकि सर्पराज होने के कारण पक्षियों के नायक गरुड़ का सहज भोज्य होगा। अतएव भगवान् विष्णु ने गरुड़ से चले जाने को कहा जिससे मथानी के रूप में मन्दर पर्वत से समुद्र का मन्थन करने के लिए वासुकि को लाया जा सके। ये सब भगवान् की अद्भुत व्यवस्थाएँ हैं। दैववशात् कुछ भी नहीं घटित होता। पक्षी की पीठ पर मन्दर पर्वत उठाना और उसे सही-सही रखना किसी के लिए भी कठिन होगा चाहे वे देव हो या असुर, किन्तु भगवान् के लिए कुछ भी करना सम्भव है जैसाकि इस लीला से स्पष्ट है। भगवान् को एक ही हाथ से पर्वत उठाने तथा उनके वाहन गरुड़ को सभी देवों और दानवों को ले जाने में भगवत् कृपा से कोई कठिनाई नहीं हुई। भगवान् योगेश्वर कहलाते हैं क्योंकि वे सर्वशक्तिमान हैं। यदि वे चाहें तो किसी भी वस्तु को रुई से भी हल्का तथा ब्रह्माण्ड से भी भारी बना सकते हैं। जो लोग भगवान् की लीलाओं में विश्वास नहीं करते वे यह नहीं बता सकते कि घटनाएँ किस तरह घटित होती हैं। “दैव या संयोग” जैसे शब्दों का प्रयोग करके वे अविश्वसनीय विचारों की शरण लेते हैं। कुछ भी आकस्मिक नहीं है। सब भगवान् द्वारा किया जाता है जैसाकि स्वयं भगवान् *भगवद्गीता* में(९.१०) पुष्टि करते हैं—*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।* संसार में जितनी भी क्रियाएँ या प्रतिक्रियाएँ होती हैं, वे भगवान् की अध्यक्षता में होती हैं। लेकिन जब भगवान् अद्भुत कार्य करते हैं, तो असुरगण भगवान्

की शक्ति को नहीं समझते अतएव वे सोचते हैं कि वे आकस्मिक हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध के अन्तर्गत “देवताओं तथा असुरों द्वारा सन्धि की घोषणा” नामक छठे अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।